THE HINDU

Date:16-06-21

The invisible tax

Emergent action is needed to rein in inflation as people face income losses, medical costs

Editorial

The pandemic's second wave may have subsided but hopes of a smooth rebound in the economy in tandem with easing restrictions remain muddled, with the inflation numbers for May compounding the problem. The soaring pace of rising prices, both retail and wholesale, in the month that saw widespread lockdown-like restrictions, has come as a negative surprise. Inflation based on the Wholesale Price Index is reckoned to have hit a 25-year record of nearly 13%, while retail inflation touched a six-month high of 6.3%. While runaway fuel prices, that include high excise duties and taxes, were a key factor in driving up both the inflation indices, they were not the only ones at work. Retail inflation in food hit a six-month high of 5%, from barely 2% in April, with pulses and eggs as well as edible oils leading the surge. 'Fuel and light' inflation hit 11.6%, the highest in over nine years, and no respite is in sight on this front as pump prices for petrol raced past ₹100 a litre in even more parts of the country this month. Diesel has also crossed the century mark in Rajasthan's Sri Ganganagar, where freight costs add up on top of State and central taxes. Even if one were to discount food and fuel prices, core inflation has crossed the 6% mark for the first time in 31 months and is estimated at 6.6%.

Reacting to the April retail inflation print of 4.3%, after averaging a steep 6.2% through 2020-21, the RBI Governor had remarked earlier this month that it brought some relief and 'elbow room' for sticking with growth-supportive policy. If anything, May's inflation prints leave no such room for manoeuvre. Though the bank's Monetary Policy Committee may not switch away from its dovish policy, no further easing of interest rates can be expected at these price levels. Most economists expect inflation to remain higher than the average 5.1% estimated by the central bank for this year. If the Government wants the RBI to persist with its accommodative approach to facilitate growth, it must take some actions of its own to curb price rise, including meaningful cuts in fuel taxes that the RBI Governor has been advocating since February. So far, it has only obfuscated the issue with arguments ranging from 'the States should cut taxes first' to 'let's bring petroleum products under GST', and the latest claim by the Petroleum Minister who admitted that the prices are problematic, but the Government is 'saving money to spend on welfare schemes' and buying vaccines. For a population already reeling from job and income losses and higher medical costs since the pandemic's onset, the

persistently high inflation is untenable. No welfare scheme can offset its disproportionately adverse impact on the poor.

दैनिक भास्कर

Date:16-06-21

महामारी से स्टॉक मार्केट कैसे बचा रहा और आगे क्या होगा?

मदन सबनवीस, (चीफ इकोनॉमिस्ट, केयर रेटिंग्स)

जहां अर्थव्यवस्था की स्थिति पर अब तक सामने आए आर्थिक आकंड़ों पर काफी भ्रम है, वहीं एक हिस्सा, जो महामारी और लॉकडाउन के असर से बचा हुआ है, वह है स्टॉक मार्केट।

पहले देखते हैं कि सेंसेक्स किस गति से चला। जनवरी 2020 में यह 40,723 पर था और लॉकडाउन की घोषणा पर मार्च 2020 में 29,648 पर आ गया। जून में अनलॉक पर 34,916 का आंकड़ा छुआ। जुलाई के बाद से लगातार बढ़ते हुए सितंबर में 38,068 के पार चला गया, जब संक्रमण उच्चतम स्तर पर था। मार्च 2021 तक यह 49,509 पर था। दूसरी लहर के बावजूद यह मई तक 51,937 पर पहुंच गया और जून में 52,000 के पार चला गया। कोई इसे कैसे समझा सकता है?

पहले आधारभूत बातें देखें। स्टॉक मार्केट भविष्य की कमाई दिखाता है, वर्तमान की नहीं। वास्तव में, अगर आज कमाई कम है और संभावना उच्च है, तो यह समझ में आने पर कि सबसे खराब समय खत्म हो गया है, बाजार ऊपर बढ़ना शुरू कर देगा। भारतीय बाजार के मामले में कॉर्पोरेट प्रदर्शन के संदर्भ में बुरा समय निकल गया है। सवाल यह है कि यह कैसे समझें कि पहले लॉकडाउन की घोषणा से पहले सेंसेक्स 30,000 के नीचे था, लेकिन तब से 70% बढ़ गया है? दिलचस्प है कि सेंसेक्स मार्च 2020 से 70% बढ़ गया, जबकि बीएसई 100 व बीएसई 500 मार्च 2020 की तुलना में दोगुनी हो गईं। हर तरफ पागलपन है और यह केवल 30 बड़ी कंपनियों तक सीमित नहीं है।

दूसरा कारण फंड का फ्लो भी हो सकता है। यहां विदेशी पोर्टफोलियो निवेश और म्यूचुअल फंड की भूमिका है। पश्चिमी अर्थव्यवस्थाओं में नकदी का प्रवाह बना हुआ है जिसके कारण धन उभरते बाजारों में चला गया है और भारत को इससे लाभ हुआ है। यहां निवेश शायद सिर्फ त्वरित रिटर्न के लिए हुआ। म्यूचुअल फंड ने इक्विटी फंडों में रुचि देखी है और खरीदार बन गए हैं क्योंकि लोगों के पास कम रिटर्न के कारण बैंक डिपॉजिट के कम विकल्प बचे हैं। निवेश का प्रलोभन इसलिए भी ज्यादा है क्योंकि जब बाजार बढ़ता है तो खुदरा ग्राहक इसकी सवारी करना चाहते हैं जिससे सीधे इक्विटी में, साथ ही फंड के जरिए अधिक निवेश होता है। इसलिए इससे बढ़त मिली।

तीसरा कारण बाहरी प्रभाव है, जहां वैश्विक इंडेक्सों से संकेत लिए जा रहे हैं। आज अमेरिका को ग्रोथ के लिए सर्वश्रेष्ठ बाजार माना जा रहा है। अमेरिकी स्टॉक मार्केट बढ़ने पर उसकी प्रेरणा से अन्य बाजारों के बढ़ने की भी प्रवृत्ति रहती है। चौथा टीकाकरण संबंधी अंदरूनी कारण है। जब टीके की खबर आई तो बाजार में उत्साह दिखने लगा। आज भी यह भाव है कि बाजार

पर संक्रमणों की संख्या की तुलना में टीके की प्रगति का ज्यादा असर है। अब संक्रमित घट रहे हैं और टीका लगवा चुकी आबादी की संख्या बढ़ रही है, जिससे सेंसेक्स को एक और बूस्ट मिला है।

पांचवां, आरबीआई व सरकार द्वारा अपनाए गए रवैये की भी भूमिका रही है। आरबीआई के उदार रवैये से बाजार को मदद मिली है क्योंकि महंगाई बढ़ने पर चिंता थी, जिससे आदर्शत: आरबीआई की स्थिति प्रभावित होती क्योंकि मौद्रिक नीति समिति को महंगाई को लक्ष्य करना था। सरकार सुधारों पर सकारात्मक रही है, लेकिन प्रोत्साहन पर बहुत जोर नहीं है। सुधारों से बाजार में आशावाद आया है।

इसी गति से न सही, लेकिन बढ़त निश्चित दिख रही है। लेकिन यह गति किससे प्रभावित हो सकती है? क्वान्टिटेटिव ईजिंग (केंद्रीय बैंक द्वारा मुद्रा की आपूर्ति में नई मुद्रा की शुरुआत) की वापसी से बाजार अस्थिर हो सकता है, हालांकि यह इस साल नहीं होगा। वैश्विक वृद्धि भी सकारात्मक रहेगी। तीसरी लहर आती भी है, तो देश इसके लिए ज्यादा तैयार दिख रहा है। कुलमिलाकर बाजार ऊपर की ओर जाएगा, हालांकि गति अनिश्चित है। अर्थव्यव्सथा पहले ही नीचे हैं, जो और बुरी नहीं हो सकती और यह बाजार के लिए अच्छी बात होगी।

जनसत्ता

Date:16-06-21

जमीन की सेहत

संपादकीय

संयुक्त राष्ट्र में प्रधानमंत्री के संबोधन से एक बार फिर दुनिया का ध्यान जमीन की कमजोर होती सेहत की तरफ गया है। प्रधानमंत्री ने दुनिया के तमाम देशों को आगाह किया कि अगर भूक्षरण और मरुस्थलीकरण को मिल कर रोकने का प्रयास नहीं किया गया, तो इससे आने वाले समय में गंभीर संकट खड़ा हो सकता है। पर्यावरण और कृषि क्षेत्र में काम करने वाले वैज्ञानिक लंबे समय से इस समस्या की तरफ ध्यान आकर्षित करने का प्रयास करते रहे हैं। मगर विकास परियोजनाओं को दी जाने वाली अंधाधुंध मंजूरी और कृषि उत्पादन बढ़ाने की होड़ में अतार्किक ढंग से रसायनों, उर्वरकों तथा प्रसंस्कृत जीन वाले बीजों के उपयोग पर लगाम लगाने का कोई व्यावहारिक कदम नहीं उठाया जा सका है। यह कोई छिपा हुआ तथ्य नहीं है कि विकास परियोजनाओं के लिए जंगलों की अंधाधुंध कटाई की वजह से भूक्षरण की समस्या बढ़ी है। इससे जमीन के जल सोखने की क्षमता काफी कम हुई है। मगर औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने के मकसद से नए कल-कारखानों को मंजूरी देते समय पर्यावरणीय तकाजों को लगातार नजरअंदाज किया जाता रहा है। तमाम देशों ने अपनी औद्योगिक नीतियों में पर्यावरणीय नियम-कायदों को काफी लचीला बना दिया है। भारत ने भी नए उद्योगों के लिए पर्यावरणीय बाधाओं को काफी हद तक दूर कर दिया है।

खेती योग्य जमीन के बड़े हिस्से के बंजरीकरण का एक बड़ा कारण जीन प्रसंस्कृत बीजों का बड़े पैमाने पर उपयोग है। भारत जैसे देशों में पारंपरिक तरीके से बीजों के प्रसंस्करण किए जाते थे, पर उनसे फसल की पैदावार अधिक नहीं होती थी। इसलिए जीन प्रसंस्कृत बीजों के इस्तेमाल पर जोर दिया गया। इसके लिए भारत में कई कृषि अनुसंधान केंद्र खोले गए, जिनके प्रसंस्कृत बीज भारतीय वातावरण के अनुकूल होते थे। उनसे पैदावार भी अच्छी होती थी। मगर जब विदेशी बीज और उर्वरक कंपनियों के लिए भारत का

बाजार खोल दिया गया, तो उन्होंने लगभग पूरे देश की खेती-किसानी पर कब्जा कर लिया। उनके जीन प्रसंस्कृत बीजों को उगाने के लिए अधिक उर्वरकों और रसायन की जरूरत पड़ती है। यही नहीं, वे पारंपरिक बीजों की अपेक्षा अधिक पानी की मांग करते हैं। जिन खेतों में ये बोए जाते हैं, हर साल उसकी उर्वरता क्षरित होती जाती है। जाहिर है, किसानों को उर्वरकों, रसायनों और पानी की मात्रा बढ़ाती रहनी पड़ती है। इस तरह खेतों का बंजरपन बढ़ रहा है। ऐसे बीजों की बिक्री पर रोक लगाने की मांग लंबे समय से उठती रही है, मगर इस दिशा में कदम नहीं उठाए जा सके हैं।

इसके अलावा हर साल बढ़ते वैश्विक तापमान की वजह से ग्लेशियरों का पिघलना, हरित क्षेत्रों का उजड़ते जाना और मरुस्थल का विस्तार जारी है। इसे रोकने के लिए दुनिया के तमाम देश हर साल अपने कार्बन उत्सर्जन में कटौती का संकल्प तो दोहराते हैं, पर अमेरिका और चीन जैसे विकसित देश इसमें सहयोग के लिए राजी नहीं होते, जो कि सबसे अधिक कार्बन उत्सर्जन करते हैं। छिपी बात नहीं है कि विकास परियोजनाओं और उत्पादन पर जोर तथा कार्बन उत्सर्जन में कटौती दोनों पक्षों में संतुलन बनाना बहुत सारे देशों के लिए संभव नहीं हो पा रहा। यह संतुलन न बिठा पाने का ही नतीजा है कि पर्यावरण प्रदूषण का असर बहुत सारी फसलों पर भी पड़ रहा है। नदियों का जल प्रदूषित होने की वजह से खेतों की उर्वरता नष्ट हो रही है। प्रधानमंत्री ने कहा कि दुनिया का दो तिहाई हिस्सा भूक्षरण की समस्या से जूझ रहा है। निस्संदेह इस समस्या से पार पाना है, तो दुनिया के तमाम देशों को इस दिशा में व्यावहारिक पहल करनी होगी।

राष्ट्रीय सहारा

Date:16-06-21

दोहरी मार के मायने

संपादकीय

मई 2021 के थोक महंगाई और खुदरा महंगाई के आंकड़े सिर्फ चिंता में डालने वाले नहीं हैं, बल्कि बहुत गहराई से डराने वाले हैं। खुदरा महंगाई मई, 2021 में 6.3 प्रतिशत पर पहुंची, यह अप्रैल, 2021 में 4.23 प्रतिशत थी। गौरतलब है कि रिजर्व बैंक दो प्रतिशत से नीचे की खुदरा महंगाई दर और छह प्रतिशत से ऊपर की खुदरा महंगाई दर को खतरे की घंटी मानता है यानी खुदरा महंगाई खतरे की सीमा के पार जा चुकी है। थोक महंगाई ने मई, 2021 में रिकार्डतोड़ तेवर दिखाए हैं। यह दर 12.94 फीसदी पर पहुंच गई है। यह दर एक महीने पहले यानी अप्रैल, 2021 में 10.49 फीसदी थी। मई, 2020 यानी एक वर्ष पहले तो थोक महंगाई दर नकारात्मक थी यानी थोक महंगाई दर में मई, 2020 में 3.37 फीसदी की गिरावट दर्ज की गई। थी। थोक महंगाई और खुदरा महंगाई के मसले दरअसल अब आम आदमी के लिए अस्तित्व के मसले बन गए हैं। दालों, प्याज, आलू, खाने के तेलों की महंगाई ने आम आदमी का बजट बिगाड़ दिया है। कच्चे तेल के भावों के ग्लोबल बाजार में बढ़ने के अपने संकट हैं। महंगाई का मुकाबला आम आदमी करता रहा है पर इस बार हालात अलग हैं यानी सामान्य वक्त में आम आदमी का धंधा रोजगार चलता रहता है, चिंता-परेशानियां दूसरे स्तर की होती हैं पर ये नहीं होतीं कि कहीं कोरोना बीमार ना कर दे, कहीं नौकरी चली ना जाए, कहीं धंधा खत्म न हो जाए। अब एक तरफ तो संकट यह है कि जैसे-तैसे आमदनी को बचाया जाए और दूसरी तरफ संकट यह है कि महंगाई आय को ही कुतरे ले रही है। कच्चे तेल के महंगे होने के तर्क अपनी जगह ठीक हैं कि ग्लोबल बाजार में कच्चा तेल महंगा होता है, तो भारतीय उपभोक्ताओं को भी ज्यादा भाव देने पड़ते हैं पर जब ग्लोबल बाजार में कच्चे तेल के भाव कम होते हैं, तब भी उसे सस्ता पेट्रोल या डीजल नहीं मिलता। डीजल और पेट्रोल के भावों पर केंद्र

और राज्य सरकारों के बीच राजनीति ही देखने को मिल रही है। सर्वदलीय बैठक में यह फैसला किया जा सकता है कि उपभोक्ताओं को राहत पहुंचाने के लिए केंद्र और राज्य सरकारें अपने-अपने हिस्से के करों का थोड़ा सा बलिदान करें और पेट्रोल और डीजल को सस्ता बनाएं। पेट्रोल और डीजल सस्ते होंगे, तो परिवहन लागत कम होने के कारण तमाम आइटमों की महंगाई कम हो सकती है। अब केंद्र और राज्य सरकारों को डीजल और पेट्रोल पर राहत देने पर विचार करना ही चाहिए। पानी अब सिर से ऊपर हो रहा है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:16-06-21

बुजुर्गों से सुलूक

संपादकीय

कोरोना महामारी ने दुनिया भर के इंसानी समाजों को बहुत करीब से आईना दिखाया है, लेकिन इसकी दूसरी लहर ने खास तौर पर कई सामाजिक-पारिवारिक कटु हकीकतों से रूबरू कराया। गैर-सरकारी संगठन 'एजवेल फाउंडेशन' का ताजा सर्वे इसका ठोस उदाहरण है और चिंताजनक भी। संगठन ने अपने अध्ययन में पाया है कि दूसरी लहर के मद्देनजर लगे लॉकडाउन के दौरान 73 प्रतिशत बुजुर्ग दुर्व्यवहार के शिकार हुए। करीब 35 प्रतिशत वरिष्ठ नागरिकों को तो घरेलू हिंसा सहनी पड़ी। जाहिर है, इनमें महिलाओं की तादाद ज्यादा होगी। भारत में एक के बाद दूसरी सरकारों ने स्त्री सशक्तीकरण की दिशा में कई अहम कदम उठाए, और उन कोशिशों के सुफल भी अब दिख रहे हैं, लेकिन जो महिलाएं इस समय बुजुर्गियत जी रही हैं, उनमें से ज्यादातर की दूसरों पर आर्थिक निर्भरता और शारीरिक अशक्तता उन्हें उपेक्षा के लिहाज से अधिक संवेदनशील बना देती है।

पिछले वर्ष के लॉकडाउन के दौरान घरेलू हिंसा के मामलों में 10 साल का रिकॉर्ड टूट गया था। 25 मार्च से 31 मई के बीच पीड़ित महिलाओं ने अपने साथ हिंसा की 1,477 शिकायतें दर्ज कराई थीं, जो उस कालखंड की एक भयावह तस्वीर पेश कर रही थी। यह स्थिति तब थी, जब सामाजिक रूढ़ियों के कारण अनगिनत घटनाएं किसी तहरीर का हिस्सा नहीं बन पातीं। दरअसल, संक्रमण का डर, कमाई की चिंता, महानगरों के दड़बेनुमा घर में सिमट आई जिंदगी ने अनगिनत लोगों के सामने एक ऐसी स्थिति रख दी थी, जो उनकी कल्पना में भी नहीं थी। ऐसे में, हालात से उत्पन्न तनाव एक बड़ी चुनौती बनकर सामने आए थे। पर दूसरी लहर के दौरान न तो

लॉकडाउन उतने सख्त या लंबी अवधि के लगे और न ही यह परिस्थिति अचानक पैदा हुई थी, इसके बावजूद बुजुर्गों के साथ हो रहा बर्ताव बताता है कि हमारे पारिवारिक मूल्य तेजी से दरक रहे हैं और उनको संजीदगी से सहेजने की जरूरत है।

पारंपरिक भारतीय परिवारों यानी संयुक्त परिवारों में बुजुर्गों की देखभाल कोई समस्या इसलिए नहीं हुआ करती थी, क्योंकि तब उन्हें एकाकीपन से नहीं जूझना पड़ता था। भावनाओं की साझेदारी के साथ उनकी बहुत सारी शिकायतें यूं ही तिरोहित हो जातीं और वे उपेक्षित नहीं महसूस करते थे। फिर परिवारों व संततियों पर लोकलाज का अंकुश हमेशा बना रहता था। लेकिन व्यापक सामाजिक-आर्थिक बदलावों के कारण एकल परिवारों का चलन अब मजबूरी है और महामारी ने ऐसे परिवारों के सदस्यों के तनाव को ज्यादा गहरा किया है। एजवेल फाउंडेशन जैसे संगठनों के अध्ययन हमारे नीति-नियंताओं के लिए आंख खोलने वाले होने चाहिए। तब तो और, जब देश अभी दूसरी लहर से पूरी तरह उबरा नहीं है, तीसरी लहर की आशंका को टालने का इसे उपक्रम करना है और अर्थव्यवस्था को पटरी पर वापस लाना है। विगत वर्षों में बुजुर्गों के अधिकारों को संरक्षित करने वाले कई अच्छे कानून बने, बावजूद इसके यदि 73 प्रतिशत बुजुर्ग दुर्व्यवहार के शिकार बनते हैं और 35 फीसदी को पीड़ादायक स्थितियों से गुजरना पड़ता है, तो यह उन कानूनों के क्रियान्वयन, उन्हें लेकर सामाजिक जागरूकता को कठघरे में खड़ा करता है। वैसे भी, बच्चों व बुजुर्गों के अधिकारों की रक्षा किए बिना कोई समाज सभ्य नहीं कहला सकता।

Date:16-06-21

अब बेहतर बौद्धिक समझ बने

सिद्धार्थ मल्लवरापु, (प्रोफेसर, शिव नाडर विश्वविद्यालय)

विश्वविद्यालय अमूमन ऐसे क्षेत्र माने जाते हैं, जो कम से कम राजनीतिक और सामाजिक बुराइयों की रोजमर्रा की कालिख से दूर हैं, जबकि वे अक्सर इन बुराइयों के चरित्र और प्रकृति का गंभीर अध्ययन करते हैं। यह दूरी उन्हें एक खास सुविधा भी देती है। वे गुबार के शांत होने और यह बताने के लिए कुछ इंतजार कर सकते हैं कि इतिहास के एक खास वक्त में उस दौर का क्या मतलब था? घरेलू और वैश्विक स्तर पर अभी जो हालात हैं, ये दरअसल वही निर्णायक क्षण हैं।

यकीनन, इस त्रासद अंतरराष्ट्रीय स्वास्थ्य आपदा पर काफी कुछ लिखा जाएगा। उनमें से कुछ निर्विवाद रूप से इस वैश्विक महामारी के इतिहास के रूप में प्रतिष्ठित भी होंगे। मगर बतौर शैक्षणिक संस्थान हमारी भूमिका और उद्देश्य क्या होने चाहिए, इसके बारे में विमर्श की दरकार है। मैं यहां कुछ प्रस्तावों की चर्चा कर रहा हूं, जो चीजों को व्यापक नजरिये से देखने की बेहतर बौद्धिक समझ विकसित करने को प्रेरित करते हैं।

पहला, हमें यह समझना होगा कि किस प्रकार का ज्ञान मूल्यवान है? बेशक यह बहुत हल्का सवाल माना जाएगा, लेकिन बतौर विचारशील समाज हमें पीछे नहीं हटना चाहिए। अभी तो हमारी पहली प्राथमिकता देश-दुनिया को हलकान करने वाले कोरोना वायरस का एक विश्वसनीय इलाज ढूंढ़ना है। इसमें वैज्ञानिक ज्ञान हमारी खासा मदद कर सकता है। सार्वजनिक विचार-विमर्श में इसकी शुचिता फिर से कायम की जानी चाहिए। भले ही, व्यावहारिक ज्ञान की अपनी एक खास प्रतिष्ठा होती है, लेकिन हमें मौलिक अनुसंधानों में निवेश का महत्व कतई नहीं भूलना चाहिए। रोम एक दिन में नहीं बना था। वैज्ञानिक उद्यम की इमारत तैयार होनी चाहिए और बेरोकटोक शोध एवं अनुसंधान को आगे बढ़ाने के लिए जरूरी संसाधनों का निर्माण व पोषण किया जाना चाहिए।

हमें यह भी याद रखना होगा कि महामारी का सार्वजनिक स्वास्थ्य पर बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ता है। गंभीर सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक असर के साथ इस प्रभाव का विस्तार हमारी राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर और बाहर होता है। इन पहलुओं को प्रभावी ढंग से समझने के लिए हमें ज्ञान के विविध रूपों को समझने की जरूरत है।

मानविकी और सामाजिक विज्ञान का व्यापक प्रसार यहां विशेष रूप से प्रासंगिक है। खास परिवेश और स्थानीय भाषाओं में लिखी गई मानवीय कहानियों (जो हमें अच्छे साहित्य से मिल जाती हैं) का कोई विकल्प नहीं है। सेवादारों और सेवा लेने वालों के बीच प्रकट होने वाली जटिलता को चिकित्सा मानवविज्ञानी मानवविज्ञान के रूप में जाहिर करते हैं। अर्थशास्त्री इंसान द्वारा अदा की जाने वाली उस कीमत को तौलते हैं, जो सार्वजनिक स्वास्थ्य में पूर्व में पर्याप्त निवेश न किए जाने के कारण इंसान को चुकानी पड़ती है। शासन की विफलताएं कई राजनीतिक गड़बड़ियों की जड़ हैं।

यदि हम यह याद रखते हैं कि महामारी एकबारगी नहीं आती, तो हमारे इतिहासकारों को दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में अपनी बात रखने को कहा जा सकता है। लोगों का मानसिक स्वास्थ्य मनोवैज्ञानिकों के लिए तत्काल चिंता का विषय है। लिहाजा, इन क्षेत्रों में ऊंचे दर्जे की समझ विकसित करने के मूल्य को पहचानना आवश्यक है। जो समाज इन समझदार विकल्पों को तैयार करता है, उसके अल्पावधि व दीर्घावधि, दोनों में बेहतर होने की संभावना है। मैं यह कतई नहीं मान सकता कि भारत इस मामले में कोई अपवाद है।

दूसरा, नागरिक भावना और नागरिकता के उन मॉडलों पर ध्यान देने की जरूरत है, जिनको हम बढ़ावा देना चाहते हैं। भारत की बात करें, तो यहां जब बुनियादी मानदंडों और स्वास्थ्य प्रोटोकॉल को लागू करने की वकालत की जाती है, तब आमतौर पर नागरिक भावना या अनुशासन की कमी का विलाप होने लगता है। बेशक विश्वविद्यालय में आने से पहले के तमाम आयाम (परिवार, स्कूल और कॉलेज) अपनी जिम्मेदारी का ठीक-ठाक निर्वहन करते हैं, मगर विश्वविद्यालय मानवोचित नागरिकता विकसित करने के लिए एक अलग मंच मुहैया करा सकते हैं।

सामाजिक और राजनीतिक जागरूकता इस कार्य के अभिन्न अंग हैं। यहां यह कतई न समझा जाए कि मैं विश्वविद्यालयों के राजनीतिकरण की दलील दे रहा हूं। बल्कि यह नागरिकों में सहानुभूति का निर्माण करने और उनको सीखने व विस्तारित समुदायों में कमजोर लोगों को शामिल करने के लिए समग्रता व संवेदनशीलता के साथ काम करने की दलील है।

तीसरा, अकादमिक स्पष्टता अपरिहार्य है। हमारा अनुभव भी कहता है कि यह जीवन और मृत्यु का मामला भी हो सकता है। मौजूदा संदर्भ में ही देखें, तो जब वायरस की उत्पत्ति के संबंध में एक स्पष्ट राय बनाने, या सार्वजनिक मंचों पर उपलब्ध आंकड़ों का यर्थाथवादी मूल्यांकन करने, या वायरस के तमाम म्यूटेशन (चरित्र बदलने) पर चर्चा करने की बात आती है, तब हमें अवश्य सच और झूठ की पहचान करना सीख लेना चाहिए। इसका मतलब यह भी है कि सिर्फ सच को जान लेना काफी नहीं है, बल्कि उसकी विश्वसनीयता को जांचने के आवश्यक रास्तों से भी हमें अवगत होना चाहिए। एक सतर्क नागरिक को इन सबके प्रति सचेत रहना चाहिए।

और आखिरी बात, व्यापक लोगों के लिए प्रभावी संवाद करने में विश्वविद्यालयों को गंभीर चुनौती का सामना करना पड़ता है। इसके लिए प्रासंगिक क्षेत्रों में प्रतिस्पद्र्धात्मक विकास को साझा करने की दरकार है। नए-नए शोध से महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि मिल सकती है। हालांकि, इसे सबके लिए समान रूप से प्रभावकारी और सुगम बनाया जाना चाहिए। जाहिर है, इसके लिए आधिकारिक तौर पर संवाद करने की आवश्यकता है, जिसमें निष्पक्षता अनिवार्य है।

हालांकि, संचार एकतरफा रास्ता नहीं है। हमें दूसरे सिरे पर ऐसे लोगों की जरूरत होगी, जो अपने पास मौजूद ज्ञान का लाभ उठा सकें। कई अन्य महत्वपूर्ण कारक भी यहां काम करते हैं, जैसे, राजनीतिक नेतृत्व की प्रकृति, संस्थाओं का चरित्र, राष्ट्र की क्षमता आदि। इनमें से प्रत्येक पर भी तत्काल ध्यान दिए जाने की जरूरत है।